Chap-8

अष्टम् अध्याय

उपसंहार

स्वातन्त्र्योत्तर कथा-संरचना में एक बड़ा वैचारिक बदलाव महसूस किया गया, जिसकी पृष्ठभूमि में स्वतन्त्रता संग्राम से उत्पन्न मानसिक तनाव तथा संघर्ष का उद्वेग मुख्य विषय रहा है। वैसे तो साहित्य की सभी विधाओं में यह बदलाव दृष्टिगत होता है, किन्तु कथा-साहित्य में आज़ादी की लड़ाई, बँटवारा और तज्जन्य और अनेक घटनाओं को इन उपन्यासकारों ने अपने-अपने नज़रिए से जब कथांकित किया तब पाठक वर्ग का रुझान उसके प्रति केन्द्रित हो गया। सामाजिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक धरातल पर इन उपन्यासकारों ने कथानक के वृत्त को सुदूर अतीत के झरोखों से देखा और परखा था। स्वतंत्रता के बाद का समय जनतांत्रिक मूल्यों की स्थापना का समय था, और ऐसे संक्रमणकाल में जनचेतना की उपलब्धियाँ तथा इससे उत्पन्न बुराईयाँ भी उद्घाटित हुई हैं। प्रशासकीय शक्ति जब जन-प्रतिनिधियों में आबंटित हो गई, तब राजदंड की एकनिष्ठ शक्ति भी जैसे बिखर गई। लचीले कानूनों पर आश्रित न्याय-व्यवस्था भी पारदर्शी नहीं रह पाई, और धीरे-धीरे परिस्थितियाँ विषम होती गई। जातिवाद, वर्णवाद, आरक्षण, ऊँच-नीच, छूत-अछूत, वर्ग-भेद तथा राजनीतिक स्वार्थपरता ने जैसे सारे माहौल को भ्रष्ट कर दिया। राजव्यवस्था जन-प्रतिनिधियों के हाथ से निकलकर माफिया समर्थक तक कुछ शातिर गुंडाओं के हाथ में आ गई। ऐसी विषम परिस्थिति में लोग अनुशासक के लिए अँग्रेजी हुकुमत को याद करने लगे। न्याय और सद्भाव के लिए राजतंत्र का स्मरण

किया जाने लगा, और साँस्कृतिक एवं धार्मिक चेतना के लिए अतीत के गौरवमयी स्वर्णाक्षरित पौराणिक प्रसंगों को खोजा जाने लगा।

डॉ. त्रिपाठी ने इसी सिलसिले में सांस्कृतिक एवं राजनैतिक विघटन के क्षणों में आदर्श नीतियों की पुनर्स्थापना के लिए तथा व्यक्ति के विश्वास को जमीन पर अंकुरित करने के लिए पौराणिक पृष्ठों पर आदर्श और निष्ठा से युक्त प्रसंगो को सामने रखने का यत्न किया। उन्होंने इस देश के गौरवशाली इतिहास का पुनर्वाचन करते हुए उस काल के अनेक चरित्रों का उभार कर जन चेतना को एक विश्वस्त मार्ग प्रशस्त किया। उन्होंने सामाजिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक घटना-चक्रों का अध्ययन करते हुए उन्हीं परम्परित कथा-प्रसंगों को एक नए नजरिए से प्रस्तुत करने का यत्न किया। सामाजिक सरोकार से संबंधित उनके उपन्यासों में - फिलहाल, शून्य, रिक्शावाले की डायरी, ऐसे हैं मेरे, ऐसी भी हैं, कैसा दोराहा, बड़ों की बात, रजतजयंती आदि कथा-ग्रंथों का सृजन किया। इनके साथ ही उन्होंने इतिहास के झरोखों से सत्यनिष्ठ आदर्शों को स्थापित करने वाली राज्य सभाओं के नृत्य, कथा-धाराओं को अधिगृहीत किया। उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपन्यास 'सम्राट अशोक' है। पाटलिपुत्र की धरती पर एक आदर्श राज्य की स्थापना करने वाले सम्राट अशोक अपनी शौर्यता और उदारता दोनों ही के कारण जनमानस के लिए आदर्श रहे हैं।

डॉ. त्रिपाठी ने आसक्ति और विरक्ति दोनों ही स्थितियों में अशोक की ओजस्विता को संभाले रखा है। उनका शौर्य जहाँ एक ओर अनंत जनसंहार के लिए उत्प्रेरित होता है, वहीं विरक्ति के क्षणों में उनकी उदारवादी चेतना इस नरसंहार से पलायन करती हुई आत्मग्लानि के स्तर तक पहुँच जाती है। डॉ. त्रिपाठी ने सम्राट अशोक के चरित्र को केवल ऐतिहासिक दृष्टि से ही कथांकित नहीं किया, और न ही उनका उद्देश्य अतीत की तरह इस विशिष्ट घटना का पुनर्वाचन करने का था, उन्होंने तो शांति के परिप्रेक्ष्य में युद्धोन्मादी महाशक्तियों द्वारा सृजित विनाश को सामने रखा है। यौद्धिक निषेध उनका केन्द्रिय विचार है, जहाँ वे आज के संदर्भ में विगत दो विश्वयुद्धों की विनाशलीला से भयाक्रांत नजर आते हैं, युद्ध का निषेध और

सद्भावना का प्रसार उनका पुण्य संकल्प रहा है। उन्होंने कहीं भी बर्बर क्रांति या नरसंहार का समर्थन नहीं किया, क्योंकि अपनी ही धरती पर उन्होंने आज़ादी की लड़ाई के तत्व इस पीड़ा का अनुभव किया था। अशोक के रुप में कथाकार स्वयं युद्धोन्मादी उद्वेगों की प्रशांति के लिए कटिबद्ध नज़र आता है, और वर्तमान में इस प्रकार के किसी भी नरसंहार को रोकने के लिए वह जनमानस को उत्प्रेरित करता है।

'सम्राट अशोक' की ही तरह एक और बेगम, महाराज, जहाँदारशाह, प्रजाप्रिय प्रजेश, सत्ता और संघर्ष, जय-विजय, दुरभि-सन्धि, राजहठ, अशोक का अवसान, राज्याभिषेक आदि अनेक ऐतिहासिक उपन्यास हैं, जिनमें राजनीति में व्याप्त सत्ता-प्राप्ति के घिनौने षडयंत्रों को सामने रखा गया। आज के प्रजातांत्रिक परिवेश में भी 'येन केन प्रकारेण' सत्ता हथियाना और स्वार्थपरता से संलग्न षडयंत्रों का संचालन करना जैसे आम बात हो गई है। डॉ. त्रिपाठी न ऐतिहासिक कथा-संदर्भों के माध्यम से समसामयिक लोकतंत्रजन्य ऐसी ही राजकीय महत्वाकांक्षित स्वार्थी शक्तियों को उभारने का यत्न किया है। उनके अधिकांश ऐतिहासिक उपन्यास किसी अनुभूत मनोदशा को चित्रित किए हुए से जान पड़ते हैं। इनमें सत्ता के प्रति आक्रोश, अन्याय के प्रति इंकलाब, शोषण के प्रति क्रांति और बर्बरता के प्रति संकल्पबद्ध सौहार्द की भूमिका स्पष्ट होती है। कथाकार 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की औदार्यवादी चेतना से संलग्न होकर 'सहनौ भुनक्तौ' अथवा 'सम् रक्षत्ध्वम्' के सहअस्तित्वभर विश्वास जमाए हुए हैं।

डॉ. त्रिपाठी के कथा-सृजन का कौशल इसी से उद्घाटित होता है, कि उन्होंने कहीं भी अपने अभीष्ट को सतही रुप से व्याख्यायित करके हल्का नहीं बनाया, बल्कि इंगित मात्र से ही उन्होंने परोक्ष से प्रत्यक्ष की कथा-गति को निर्दिष्ट किया है। आपकी कालजयी दृष्टि वर्तमान से होती हुई अतीत की उन घटनाओं को बींधती है, जिन्हें इतिहास में स्थायी रुप से स्वीकार कर लिया गया है। डॉ. त्रिपाठी का विश्वास है, कि इतिहास सदा जीवन्त रहता है, परंतु जो इसे मात्र गड़े मुर्दों का खंडहर समझकर उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं, वे ऐतिहासिक योगदान से वंचित ही नहीं रह जाते, वरन् भटकाव की मनःस्थिति में डूबते-उतराते रहते हैं।

डॉ. त्रिपाठी अपनी रचनाओं के लिए इतिहास से सामग्री ग्रहण करते हैं। उन्हें इतिहास विगत में निर्जीव नहीं बल्कि वर्तमान में साँस लेता हुआ दिखाई देता है। इतिहास को पढ़ते समय वह बड़ी सरलता से उस युग-विशेष में मानसिक रुप से पहुँच जाते हैं, और तत्कालीन घटनाओं, उतार-चढ़ाव से ऐसे निष्कर्ष निकालते हैं, जो वर्तमान युग की समस्याओं के संदर्भ में समीचीन प्रतीत होते हैं। वह स्वयं मानते हैं कि "वर्तमान से भूत और भूत से वर्तमान की यात्रा वह मानसिक रुप में प्रायः किया करते हैं। इस यात्रा के मध्य जो पड़ाव बीच में आते हैं, वे पड़ाव ही रचना की आधारभूमि बनाते हैं। कौन पड़ाव कितना उत्प्रेरक है, यह निर्भर करता है सुविधापूर्ण आकर्षण पर। पड़ाव रुप में जो रचना प्रकाशित होकर सामने आती है, उसके अध्ययन में पाठक का मन कितना रमता है, यह बहुत कुछ निर्भर करता है, रचना की हृदयग्राही सरलता और सरसता पर तथा पाठकीय मनोवृत्ति पर।"

डॉ. त्रिपाठी के कथा साहित्य को मूलतः दो वर्गों में विभाजित किया गया है - ऐतिहासिक और सामाजिक। ऐतिहासिक रचनाओं के आलोड़न-विलोड़न से जो चेतना प्रस्फुटित हुई वह भारतीय इतिहास के इस विशाल फलक को नवजीवन्तता प्रदान करती है, और साथ ही आधुनिक युग की समस्याजन्य चेतना को भी प्रभावित करती है। रचनाकार तो वर्तमान युग का आधुनिक प्राणी होता है, और युग तो बहुविधि समस्याओं से घिरा होता है। रचनाकार एक संवेदनशील प्राणी होने के कारण उन तमाम समस्याओं से अलग नहीं रह पाता, और हल पल उन्हीं में रमा रहता है। जब भी उसकी दृष्टि अतीत में झाँकती है, तब वह स्थिर वहीं रहती है जहाँ वर्तमान जीवन को समस्याओं की समरुपता की झलक मिलती है, अथवा समाधान के भी दर्शन होते हैं। कभी-कभी रचनाकार के मन-मस्तिष्क से ऐसी चुनौतियाँ टकराती हैं, जो उसे वर्तमान से अतीत में झाँकने के लिए विवश कर देती है।

डॉ. त्रिपाठी अध्ययन-प्रिय प्राणी होने के नाते विश्वसनीयता,और अपरिवर्तनशीलता के कारण ऐतिहासिक अतीत को श्रेष्ठ मानते हैं। उनका मन इतिहास में अधिक रमता भी है, शायद इसीलिए उन्होंने मौर्यकाल से लेकर उत्तर मुगलकाल तक की प्रिय-अप्रिय प्रसंगो, चरित्रों,

घटनाओं आदि को अपनी रचनाओं का मुख्य विषय बनाया। रचनाकार कितना भी इतिहासप्रिय क्यों न हो, आधुनिक चेतना की उपेक्षा कर पाना उसके लिए मुश्किल काम है। डॉ. ने अपनी हरेक ऐतिहासिक रचना में एक या उससे अधिक समस्याजन्य चेतना को उपन्यास के कथ्य में समाहित किया है। उनके रचनात्मक कौशल की विशेषता यह है कि उनकी रचनाओं में आधुनिक युग की समस्या भी ऐतिहासिक तथ्य की समस्या प्रतीत होती है। उनके प्रस्तुत करने का तरीका इतना स्वाभाविक है कि वह अलग से थोपी हुई वस्तु नहीं लगती, बल्कि इतिहास-मय-सी प्रतीत होती है। ऐतिहासिक उपन्यासों में पात्र, स्थान, घटनाएँ आदि इतिहास से संबद्ध तो अवश्य होती हैं, किन्तु उनमें चित्रित भाव, विचार तथा समस्याएँ और यहाँ तक कि उसके प्रस्तुतिकरण का रुप भी आधुनिक ही रहता है, क्योंकि रचनाकार भोक्ता होता है, आधुनिक रुप का और उसे प्रत्यारोपित करता है ऐतिहासिकता में।

कहने का तात्पर्य यह है कि डॉ. त्रिपाठी जितने इतिहासज्ञ और इतिहास-प्रेमी हैं, उतने ही आधुनिक चेतना के चतुर-चितेरे भी हैं। यह कहना उचित और विश्वासपूर्वक है, कि डॉ. त्रिपाठी के ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐतिहासिकता व आधुनिकता का मणिकांचन संयोग सही रुप में प्रस्तुत हुआ है।

डॉ. त्रिपाठी के सामाजिक उपन्यासों की संख्या भी कम नहीं है, उन्होंने ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना करते-करते सामाजिकता की ओर क्यूं मूड़े? इसका अनुमान लगाने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि इस प्रश्न का उत्तर देते हुए वह स्वयं कहते हैं, - "ऐतिहासिक उपन्यास-लेखन अत्यंत श्रमसाध्य कार्य है। ऐतिहासिक उपन्यास लेखन में लिखना कम विश्वसनीय विषय-सामग्री के चयन के लिए दौड़-धूप अधिक करनी पड़ती है। जो भी सामग्री यत्र -तत्र विकीर्ण रुप में उपलब्ध होती है, उसका अध्ययन, चिन्तन और मनन पर्याप्त श्रम की अपेक्षा रखता है। श्रम की भी एक सीमा होती है। निरन्तर श्रमशील बने रहना भी मानव-प्रकृति के लिए प्रतिकूल है। मानव-प्रकृति परिवर्तन-प्रेमी होती है, और इतिहास होता है अपरिवर्तनीय। एकरसता जन्य ऊब से उत्पीड़ित मन कभी-कभी विद्रोह कर उठता है, और सशक्त विद्रोह से

प्रताड़ित मन ऐतिहासिकता से पिंड छुड़ाकर वर्तमान में आ रमता है। फलतः रचना-धर्मिता के प्रति संकल्पित मन सामाजिक उपन्यास-लेखन में प्रवृत्त हो जाता है। फलतः सामाजिक उपन्यास अस्तित्व धारण कर लेता है, किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि ऐतिहासिक अध्ययन से सदा के लिए पिण्ड छुड़ा लिया है, बल्कि सूचना के तौर पर बताना चाहूँगा कि मैं इन दिनों में संपूर्ण भारतीय इतिहास को औपन्यासिक रुप में प्रस्तुत करने में संलग्न हूँ। यह संलग्नता भी ऐतिहासिकता को अटूट और अविरल धारा के रुप में सतत प्रवहमान किए हुए है, जिसमें मन-मस्तिष्क निरन्तर अवगहन किया करता है। यह बहु बड़ा कार्य है। जितना बड़ा है उतना ही श्रम साध्य भी है। काम और श्रम के मध्य निरंतर द्वंद्व बना रहता है। न जाने काम के समक्ष श्रम को मुँह की खानी पड़ेगी या श्रम ही काम का काम तमाम करके ही दम लेगा। इसका निर्णय तो समय ही करेगा। हाँ, जब कभी आधुनिकता के अंक में ऐतिहासिकता विश्राम लेने लगती है, तब सामाजिकता रचनात्मक रुप धारण करने के लिए व्याकुल हो उठती है। यह व्याकुलता तभी विश्राम पाती है, जब किसी सामाजिक उपन्यास का जन्म होता है।"

आधुनिक भारत असंख्य समस्याओं से घिरा हुआ है, और प्रत्येक समस्या बहुरुपिणी प्रतीत होती है। समस्या जितनी असामान्य होती है, समाधान भी उतना ही असामान्य होता है। डॉ. त्रिपाठी जैसे संवेदनशील रचनाकार इस असामान्यता को उतनी ही गम्भीरता से ग्रहण करते भी हैं, और उसका समाधान औपन्यासिक रुप में प्रस्तुत करते हैं। डॉ. त्रिपाठी की यह प्रस्तुति उनके सामाजिक उपन्यासों में पृथक-पृथक तथा विस्तृत रुप में चित्रित हुई है। यह चित्रण स्वाभाविक होने के साथ-साथ मनोमुग्धकारी भी है।

डॉ. वाल्मीकि त्रिपाठी उपन्यास-लेखन को केवल मनोरंजन का साधन नहीं मानते, अपितु जीवन-निर्माण की दिशा में एक सम्प्रेरक रुप तथा दिशा-निर्देशक का साधन भी मानते हैं। इस सुदृष्टि को उन्होंने अपनी प्रत्येक रचना में सिद्ध करने की सफल चेष्टा भी की है। वे ऐतिहासिक उपन्यास की भाँति सामाजिक उपन्यास को भी जीवन-यात्रा के मार्ग का ऐसा 'मील का पत्थर' मानते हैं, जो प्रगति का मात्र अंकन ही नहीं करता, बल्कि दिशा-बोध भी कराता है।

वैसे तो अपनी रचना-धर्मिता के निर्वाह में डॉ. त्रिपाठीने विशुद्ध रुप से अपने लक्ष्य का संधान करते हुए साहित्य के उन्हीं आयामों का स्पर्श किया है, जिनके प्रति उनके पूर्व निर्धारण नियत थे। अर्थात् अपनी पूर्व निश्चित भूमिका के आधार पर ही उन्होंने इन तमाम औपन्यासिक कृतियों का निबंधन किया था, जिसके लिए उन्हें इतिहास के मुख्य द्वारा खटखटाने पड़े थे। प्रस्तुत शोध-प्रबंध में डॉ. त्रिपाठी के ऐतिहासिक उपन्यासों के विश्लेषण केन्द्र में रहे हैं, किन्तु इससे त्रिपाठी जी का उदार और विस्तृत सोच कुंठित नहीं हो सकता। उन्होंने प्रसंगवश इतिहास में भी वर्तमान का प्रकाश खोजा है। सम-सामयिक संदर्भों की हवाएँ तलाशी हैं, और प्रासंगिकता की तलाश में वे दूर-दूर तक अपना ताना-बाना बूनते आभासित होते हैं। इस प्रबंध के द्वारा यह भी स्पष्ट करने का यत्न किया है, कि त्रिपाठी जी मात्र ऐतिह्य तथ्यों के उद्घाटन के लिए ही यत्नशील नहीं थे, वरन् इतिहास की वनवीथियों में वे उस प्रकाश-पुँज की तलाश करते रहे हैं, जो सेंकड़ो मील दूर तक तथा सैंकड़ों वर्ष के अंतराल पर अपने अस्तित्व को प्रसरित कर सके। यही कारण है कि डॉ. त्रिपाठी इतिहास के मंच से उतर कर सामाजिक प्रत्यार्पण की भूमिका से भी संलग्न रहे हैं, जहाँ उन्होंने समाज में व्याप्त अव्यवस्था और अनैतिकता के साथ-साथ विभिन्न जीवन-मूल्यों के टकराव को भी अपने ढंग से समीक्षित किया है।

वैसे, तो डॉ. त्रिपाठी के ऐतिहासिक उपन्यासों की संख्या सर्वाधिक है ही लेकिन इनके अतिरिक्त अन्य और भी उनकी कथा-कृतियाँ हैं, जहाँ उन्होंने अपने सामाजिक बने रहने के बोध को तथा इससे जुड़े व्यक्तित्व को कथा के माध्यम से व्याख्यायित किया है। पितामह, कैसा दोराहा, बड़ों की बात, रजत-जयंती, शिकायत, दम्पत्ति, ऐसे हैं मेरे, ऐसी भी हैं आदि कथा-कृतियों के माध्यम से लेखक ने भारतीय समाज रचना के पुरावर्तन से लेकर उसकी नवीकृत छवि को भी अपने ढंग से तोलने और परखने की चेष्टा की है।

मध्यवर्गीय गृहस्थ धर्म की जीजिविषा से वे सदैव सम्पृक्त रहे हैं, यह बात चाहे सम्राट अशोक के माध्यम से व्यक्त हुई हो, अथवा गृहस्थ धर्म के अधिनायक पितामह के द्वारा, डॉ.

त्रिपाठी सर्वत्र एक संतुलित मानसिकता के माहौल में अपने निर्धारणों को सही जमीन पर निरुपित करते रहे हैं।

उनके उपन्यासों में जीवन-मूल्यों के प्रति टकराव सर्वत्र विद्यमान है। उनके राजनीतिक उपन्यासों में भी पारिवारिक विश्रृंखलाएँ स्पष्ट दिखाई देती हैं। चरित्रों एवं पात्रों के वैयक्तिक जीवन-मूल्य आपसी संघर्ष की मूल्यता रचते रहे हैं, और लेखक निर्विकार भाव से एक उद्घोषक की तरह अपने निर्णय ज्ञापित करता रहा है।

जीवन-मूल्य के प्रति बिखराव समाज के सभी वर्गों मे विद्यमान रहा है। राजकीय अधिकार संपन्न ऐश्वर्य और विलासिता से परिपूर्ण व्यक्ति भी अपनी आदिम आकांक्षाओं के लिए संघर्ष करता रहा है। तलवार की धार पर राजवंशीय पौरुष्य की गाथाएँ इतिहास का गौरव बनती रही हैं, किन्तु हर व्यक्ति हर स्तर पर अपनी सामाजिकता से सम्पृक्त अवश्य रहा है। प्रशासक वर्ग का अपना एक निजी समाज तथा निजी परिकर निश्चित रहा आया है, जहाँ वह परम्परित जीवन-मूल्यों के तहत अपने आडंबरी गौरव को प्रतिष्ठापित करता रहा है। इसी गौरव कौ वैयक्तिक अभियान या निजी घमंड की संज्ञा भी दी जा सकती है, जो आपसी संघर्ष या टकराव का मुख्य स्त्रोत है। राजभवन के अभिजात वर्ग के द्वारा जिन स्वार्थी टकरावों को लेखक ने उद्घाटित किया है, मध्य तथा उच्चवर्ग में भी यही स्वार्थी टकराव घर-घर में दिखाई देता है। निम्नवर्ग का सोच अधिक परिपक्व नहीं होता, इसलिए वह मैदानी युद्ध में आर-पार की लड़ाई लड़ने में व्यग्र रहता है।

अंत में कहा जा सकता है, कि डॉ. त्रिपाठी मानवीय जीवन के संघर्षों हर स्तर पर व्याख्यायित करके जहाँ निश्चित अभिप्राय से जोड़ा है, वहाँ उसकी प्रासंगिक उपयोगिता को भी बनाये रखा है।

अद्यावधि प्रकशित प्रचुर उपन्यास-साहित्य के आधार पर विश्वासपूर्वक डॉ. त्रिपाठी से यह आशा तो की ही जा सकती है कि वह ऐसे युगान्तकारी रचना की सृष्टि में सफलता हासिल करें और जनकल्याणकारी चेतना को ऐसा शाश्वत स्वर प्रदान कर सकें। डॉ. त्रिपाठी जन विश्वास को विश्व के परिप्रेक्ष्य में भारतीय इतिहास को यथार्थपरक औपन्यासिक रुप देने में सतत जुड़े हुए हैं। ईश्वर से विनती है, कि वह डॉ. वाल्मीकि त्रिपाठी जी को इतनी स्वस्थ तथा सुदीर्घ आयु जरुर प्रदान करें ताकि वे युगान्तकारी रचनात्मक कार्य बिना किसी विघ्न से संपन्न कर सकें।